UGC Approved Journal
Sr. No. 64310

ISSN 2319-8648

Indexed (IIJIF)

Impact Factor - 2.143

Current Global Reviewer

UGC Approved International Refereed Research Journal Registered & Recognized
Higher Education For All Subjects & All Languages

Special Issue

Issue I, Vol I 10th February 2018

Editor in Chief
Mr.Arun B. Godam

www.rjournals.co.in

Scanned with CamScanner

CURRENT GLOBAL REVIEWER
ISSN : 2319 – 8648 Impact Factor : 2.143 SPECIAL ISSUE Issue I, Vol I, 10th Feb. 2018

16	इक्कीसवी सदी के हिन्दी काव्य में बाजारवाद	स.प्रा.मुजावर एस.टी.	42
17	वैश्वीकरण के दौर में बदलते पारिवारिक मूल्य विशेष संदर्भ - आपका बंटी : मन्नू भंडारी	प्रा. डॉ. चित्रा धामणे	45
18	"वैश्वीकरण तथा अनुवाद"	डॉ. पवार विक्रमसिंह विजयसिंह	48
19	'वैश्विकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य के अंतर्गत प्रस्तुत शोधालेख' "डॉ.शंकर शेष का हिन्दी नाटक साहित्य में योगदान"	प्रा.संजय व्यंकटराव जोशी	51
20	हिन्दी कहानी और वैश्वीकरण	प्रा.विनायक कापावार	54
21	"वैश्विकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी गजल और किसान"	डॉ. मनोजकुमार खेसर	57
22	मोहनदास नैमिशराय के उपन्यास 'आज बाजार बंद है' में चित्रित वेश्या जीवन	प्रा. अशोक गोविंदराव उपाडे	60
23	"विधाओं के लिए कथा एवं पात्रों के चयन का महत्व"	प्रा.डॉ. न.पु. काळे	63
24	वैश्वीकरण और स्त्री- विमर्श	सौ.मोहिनी रणजित कुटे	67
25	"बाजारवाद के परिप्रेक्ष्य में काल कोठरी"	प्रा. रामहरी काकडे	70
26	वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में उपन्यासों में विधाओं का सम्मिश्रण	रविंद्र कारभारी साळे	72
27	वैश्विकरण : डॉ. कुसुम कुमार के नाटकों के संदर्भ में	डॉ. सविता कचरू लोंढे	75
28	वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कविता	संतोष नागरे	78
29	वैश्वीकरण और बाजारवाद	भोई बनसिंग	82
30	"वैश्वीकरण के अंधकार में हिंदी का घटता स्तर"	रुबीना शमीम खान	83
31	वैश्विकरण के दौर में हिन्दी भाषा का स्थान	शेख अब्दुल बारी अब्दुल करीम	86
32	जागतिकीकरण और हिंदी उपन्यासों में आदिवासी चिंतन	डॉ.शेख अफरोज फातेमा , सय्यद टिपुसुलतान सय्यदनुर	88

Scanned with CamScanner

CURRENT GLOBAL REVIEWER

ISSN : 2319 – 8648 Impact Factor : 2.143 SPECIAL ISSUE Issue 1, Vol 1, 10th Feb. 2018

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कविता

संतोष नागरे

सहा.प्रा.- हिन्दी विभाग, र.भ.अट्टल महाविद्यालय, गेवराई जि.बीड

----------------(28)----------------

प्राचीन भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटुंबकम' इस सूत्र पर आधारित थी। जिसमें समूचे विश्व को एक परिवार की उपमा दी गयी है। यह विश्व संस्कृति अध्यात्म एवं त्याग पर आधारित थी जिसका उद्देश्य विश्व- कल्याण था। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक आते-आते यह विश्व संस्कृति उपभोक्तावादी संस्कृति में तब्दील हो गयी।

१९९१ में मुक्त बाजार व्यवस्था का स्वीकार किये जाने से भारतीय बाजार विश्व के लिए खुला हो गया। इस खुली अर्थव्यवस्था ने उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण को जन्म दिया। इन तीनों का सीधा सम्बन्ध अनिर्बंध अर्थ-मंथन से होने से अर्थ का महत्व बढ़ा। वैश्वीकरण ने समूचे विश्व को एक ही अर्थनीति के तहत एकत्र लाकर खड़ा कर दिया। वैश्वीकरण से उपजी इस बाजार संस्कृति में अब उपभोक्ता ही मनुष्य है। हरिशंकर परसाई इस संदर्भ में कहते हैं, "जो उपभोक्ता नहीं है, उस मनुष्य का हमारे लिए कोई महत्व नहीं। हमारा कर्तव्य है हम उपभोक्ता बढ़ाएँ। मनुष्य जाति की परम्परा कायम रहे, जिसमें हमें उपभोक्ता मिलते जाएँ।"[1] वैश्वीकरण से उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति ने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, एवं प्राकृतिक परिवेश को प्रभावित किया है। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय इस संदर्भ में कहते हैं,- "सभ्यताएँ विचलित हैं, संस्कृतियाँ अपनी मौलिक विशेषताएँ खो रही है, भाषाएँ अलग विलोड़न से मटमैली हो रही है, जीवन शैलियों में सामाजिकता का लोप हो रहा है। समाज, राजनीति और प्रकृति सब एक तरह के विपर्यय और ध्वंस से गुजर रहे हैं।"[2]

वैश्वीकरण से उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति का एक ही मूल्य है लूट। मुनाफा इस संस्कृति का अंतिम लक्ष्य है। 'बाप बड़ा न बेटा, सबसे बड़ा रुपया' यह सूत्र इस संस्कृति की आधारशीला है। वैश्वीकरण से उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति में हम अपनी संस्कृति की जड़ से कट रहे हैं। विदेशी पाश्चात्य संस्कृति हम पर हावी होती जा रही है। हमारा रहन-सहन, खान-पान, भाषा, आचार विचार सब बदल रहे हैं। ये संस्कृति हमारी परम्पराओं को डेड़ कर रही है। अर्थ का महत्व हद से ज्यादा बढ़ने से प्रेम, दया, क्षमा, शांति, सामाजिक सरोकार, नैतिकता, परोपकारिता, मानवता आदि मूल्य टूट रहे हैं। संयुक्त परिवार व्यवस्था टूट चुकी है। रिटायर्ड माँ-बाप को आउट ऑफ डेट समझकर वृध्दाश्रम भेजा जा रहा है। प्रेम जैसे शाश्वत मूल्य का आज अवमूल्यन हो रहा है। विकास की इस अंधी दौड़ में हम केवल अपने स्वार्थ तथा श्रेष्ठता के लिए युध्दरत है। वर्तमान समय की इस क्रूरता को कुमार अंबुज अपनी कविता में बयान करते हैं-

"धीरे-धीरे क्षमाभाव समाप्त हो जाएगा
प्रेम की आकांक्षा तो होगी मगर जरुरत न रह जाएगी
झर जाएगी पाने की बेचैनी और खो देने की पीड़ा
क्रोध अकेला न होगा वह संगठित हो जाएगा
एक अनंत प्रतियोगिता होगी जिसमें लोग
पराजित न होने के लिए नहीं
अपनी श्रेष्ठता के लिए संघर्षरत होंगे।"[3]

बाजार से उपजी विज्ञापन संस्कृति में नारी सिर्फ एक उपभोग की वस्तु बनकर रह गयी है। नारी विज्ञापनों द्वारा अपनी देह को प्रदर्शित कर कंपनियों का रद्दी सामान बिकवाने में अहम भूमिका निभा रही है। बाजारवाद की इस विज्ञापन संस्कृति ने नारी को बाजारू बना दिया है। बाजावाद की विज्ञापन संस्कृति में नारी के तन और मन को लेकर विरोधाभास पाया जाता है। विमल कुमार इसकी पोल खोलते हुए कहते हैं-

"कि औरतों को भी मान लेना चाहिए
कि सौन्दर्य में ही छिपी हुई है उनकी आजादी।"[4]

Scanned with CamScanner

वैश्वीकरण के इस दौर में धर्म का बाजार सबसे बड़ा बाजार है। श्रध्दा के नाम पर अपने साधकों को स्वयंघोषित, पथभ्रष्ट बाबा, मोंए धर्म की भूलभूलैया में फँसाकर राजसी ऐश्वर्य भोग रहे है। भारत के मठ मंदिरों में अकूल संपदा बिखरी पड़ी है। धर्म के इस विकृत रुप को बेनकाब करते हुए डॉ.जयप्रकाश कर्दम 'नया भारत बनाए' इस कविता में कहते है-

"जहाँ धर्म का धंदा / सबसे बड़ा व्यापार हो।"

वैश्वीकरण के इस दौर में कृषिव्यवस्था चौपट हो गयी है। परिणामत : इस कृषिप्रधान देश में किसानों की आत्महत्याएँ थमने का नाम नहीं ले रही है। किसान विलुप्तप्राय जीवों की श्रेणी की ओर तीव्र गति से बढ़ रहा है। इसलिए वैश्वीकरण विकास का नहीं विनाश का मॉडल है। किसानों की आत्महत्याओं के लिए अनाज का उचित दाम न मिलना, साहूकार एवं दलालों की लूट, लालफिताशाही तथा सरकारी नीतियाँ जिम्मेदार है। किसान इन सबके विरुध्द सड़क पर उतरकर हड़ताल कर रहा है। अन्नदाता किसान को लूटनेवाले दलालों की पोल खोलते हुए बद्रीनारायण कहते है,-

"जो कोई बाजार में आएगा / चार पैसे में बिकेगा
पर दो ही पैसा पाएगा / दो तो दलाल ले जाएगा।"

वैश्वीकरण से उपजी उपभोग्यवादी संस्कृति ने गाँवों को उजाड़कर शहरों को आबाद किया है। शहरी सभ्यता साँपों से भी अधिक विषैली होती है। सामाजिक सरोकार के अभाव में शहरी मनुष्य आत्मकेंद्रित है। अकेलेपन की वजह से आज का मनुष्य महानगरीय सभ्यता एवं संस्कृति में 'ममी' बनकर रह गया है। अकेलेपन से बचने के लिए कवि प्रेमरंजन अनिमेष आसमान को ही अपना छाता बनाना चाहते हैं-

"इसलिए शहर के लोगों के पास जो छाता है
उसमें कोई एक ही आता है
इसलिए / सोचता हूँ / मैं लूँगा
तो लूँगा आसमान / कि जिसमें सब आ जाएँ
और बाहर खड़ा भीगता रहे / बस मेरा अकेलापन।"

मनुष्य का प्रकृति के साथ सदियों से रागात्मक रिश्ता रहा है। पृथ्वी के वंशज तथा मानव के आप्त पेड़ वैश्वीकरण से आहत है। जयप्रकाश कर्दम ने 'नीम' शीर्षक कविता में पेड़ और मनुष्य के आपसी रिश्तों को बड़ी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। अपने बचपन के साथी नीम के पेड़ के साथ कवि का दर्द का रिश्ता है। परिवार के एक जिम्मेदार सदस्य के रुप में नीम का पेड़ हर सुख-दुख में कवि का साथ देता रहा। शहर में बस जाने के बाद भी कवि की स्मृतियाँ नीम के पेड़ के साथ जुड़ी है। नीम के पेड़ को समर्पण के रुप में यातना के सिवा कुछ न मिला। अपने बरसों के साथी नीम के पेड़ को भाईयों द्वारा काटे जाने पर कवि का काठ बनना उसकी करुणा को बयान करता है-

"आज कटा पड़ा है नीम / घर के एक कोने में
काठ का ढेर बनकर / काठ बना गया है मुझे
नीम का काठ होना / लाश में तब्दिल हो गया है नीम।"

पेड़ों के साथ ही जंगलों का सफाया किये जाने से आदिवासियों का अस्तित्व ही खतरे में आ गया है। बाहरी घुसपैठियों ने आदिवासियों के जीवन में विस्थापन का जहर घोल दिया है। जल, जमीन और जंगल को हथियाने के लिए उपभोक्तावादी संस्कृति रोड़-रोलर की तरह आदिवासियों को कुचल रही है। औद्योगिकरण ने आदिवासियों की उपजीविका के समस्त साधन छिन लिए। अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए 'जंगल के दावेदार' आदिवासी नक्सलवाद की ओर बढ़ रहे हैं। वैश्वीकरण से उपजे कंक्रिट के जंगलों में आदिवासियों का दम घुट रहा है। हरिराम मीणा आदिवासियों की पीड़ा को बयान करते हैं-

"पृथ्वी की सारी सभ्यता
एक भीमकाय रोड़-रोलर की मानिंद
लुढ़कती आ रही है हमारी जानिब
और हम बदहवास
भाग रहे हैं खोह और गुफाओं की ओर।"

वैश्वीकरण में कंक्रिट के जंगलों के साथ-साथ जाति के भी जंगल फल-फूल रहे हैं। भारत में जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा आदि के संदर्भ में विविधता पायी जाती है। यह विविधता कभी एकता तो कभी विघटन की स्थितियाँ निर्माण करती है। आरक्षण के नाम जातिय संगठन सक्रिय हो जाने से देश का माहौल बिगड़ रहा है। आरक्षण के नाम पर पूरा देश सुलग रहा है। आदमियत की अपेक्षा जाति को अहमियत दिये जाने से आदमी नाम की जाति की दुर्दशा हो रही है। डॉ.जयप्रकाश कर्दम इस संदर्भ में कहते हैं,-

"जाति के जंगलों में आग ऐसी लगी है
आदमी नाम को अब जाति नहीं है।"[६]

वैश्वीकरण ने बच्चों के क्रीड़ा तथा मनोजगत को काफी प्रभावित किया है। कम दामों में मिलनेवाले चायनीज, जापानी आदि विदेशी खिलौनों ने हमारे बच्चों के देशी खेल छिनकर उन्हें शारीरिक तथा मानसिक क्षमता की दृष्टि से अपाहिज बना दिया है। हमारे बच्चे डीजल, पेट्रोल, सेल तथा इलेक्ट्रॉन के सहारे चलनेवाले खिलौनों के साथ खेलते-खेलते मशिन के पुर्जों में तब्दिल हो रहे हैं। हमारे बच्चे भावनाशून्य हो जाने से ब्लयू व्हेल जैसी खेल का शिकार हो रहे हैं, उनकी आत्महत्याओं का प्रमाण बढ़ रहा है। बच्चे देश का भविष्य होते हैं। विदेशी खेल तथा खिलौनों ने हमारे बच्चों का तथा देश का भविष्य अंधकारमय बना दिया है। अष्टभुजा शुक्ल इसे बेनकाब करते हुए कहते हैं,-

"सिर्फ खेल थे / हमारे पास / खिलौने नहीं थे
अपने खिलौने / हमें उधार पर बेचकर
उन्होंने खरीद लिए हमसे / हमारे खेल।
खेल नहीं बचे / हमारे पास
अब डीजल, पेट्रोल, सेल या इलेक्ट्रॉन के बिना
न चल पाने वाले / उधार के खिलौनों का
कबाड़ बचा है सिर्फ / हमारे पास..... ।"[७]

वैश्वीकरण की इस विध्वंस लीला से मानवता तथा विश्वशान्ति को बचाए रखने के लिए हमें 'वसुधैव कुटुंबकम' की अपनी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति की जड़ों की ओर पुनः लौटना ही होगा, तभी इस मुल्क की उजली विरासत को बचाया जा सकता है। जहीर कुरेशी इस संदर्भ में कहते हैं-

"बचाना है अगर इस मुल्क की उजली विरासत को
हमें अपनी जड़ों की ओर फिर से लौटना होगा।"[८]

सारांश :

समूचे विश्व को एक ही अर्थनीति के तहत एकत्र लाना वैश्वीकरण है। वैश्वीकरण से उपनिवेशवादी संस्कृति ने आदिवासियों से उनके जंगल, किसानों से उसकी खेती, समाज से भाईचारा, राजनीति से नैतिकता, परिवार से माँ-बाप, स्त्री से लज्जा, शहर से मानवता, प्रकृति से सौन्दर्य, धर्म से श्रध्दा तथा भाषा से संवाद छिनकर विनाश की ओर कदम बढ़ाया है। इसलिए वैश्वीकरण विकास का नहीं, विनाश का मॉडल है। वैश्वीकरण की इस विनाश लीला को हिन्दी कवियों ने अपनी कविताओं में बयान किया है।

संदर्भ ग्रंथ :-

१. सम्पा. डॉ.निर्मला जैन, निबंधों की दुनिया : हरिशंकर परसाई पृ.८२
२. सम्पा. विमलेश कान्ति वर्मा, मालती, भाषा साहित्य और संस्कृति, पृ.४४१
३. सम्पा. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, आधुनिक भारतीय कविता संचयन (१९५०-२०१०) पृ.१९३
४. वही, वही, पृ. २०४
५. डॉ. जयप्रकाश कर्दम, बस्तियों से बाहर, पृ.१६
६. बद्रीनारायण, शब्दपदीय, पृ.४१
७. सम्पा. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, आधुनिक भारतीय कविता संचयन (१९५०-२०१०) पृ.२२२
८. डॉ.जयप्रकाश कर्दम, बस्तियों से बाहर, पृ.४३

Scanned with CamScanner

CURRENT GLOBAL REVIEWER
ISSN : 2319 – 8648 Impact Factor : 2.143 SPECIAL ISSUE Issue 1, Vol 1, 10th Feb. 2018

९. सम्पा. बी.कृष्ण, भीम सिंह, आदिवासी विमर्श, पृ.१०३
१०. डॉ.जयप्रकाश कर्दम, बस्तियों से बाहर, पृ.५७
११. सम्पा. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, आधुनिक भारतीय कविता संचयन, पृ.१९५
१२. सम्पा. डॉ.मधु खराटे, जहीर कुरेशी की चुनिंदा गजलें, पृ.८२.

Scanned with CamScanner